International Journal of Sanskrit Research 2019; 5(5): 72-75

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2019; 5(5): 72-75
© 2019 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-07-2019
Accepted: 15-08-2019

किरण कुमार
शोधछात्र पी. एच0डी0
संस्कृत-विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

कौशल्या चौहान
शोध–निर्देशक संस्कृत–विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

Correspondence
किरण कुमार
शोधछात्र पी. एच0डी0
संस्कृत-विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला, हिमाचल प्रदेश, भारत

चरक संहिता में न्याय–वैशेषिक दर्शनों के संदर्भ

किरण कुमार, कौशल्या चौहान

प्रस्तावना
चरक संहिता आयुर्वेद का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें जहाँ आयुर्वेद द्वारा प्राणियों के दुःख निवारण करने का सफल प्रयास किया गया है। वहीं विभिन्न दर्शनों के विभिन्न सिद्धान्तों का भी वर्णन प्राप्त होता है। सांख्य का सृष्टि सिद्धान्त, पुरुष तथा सत्कार्यवाद आदि सिद्धान्त प्राप्त होते हैं। इतना ही नहीं इस दर्शन में सांख्य के साथ-साथ योग-दर्शन, न्याय तथा वैशेषिक दर्शनों के साथ ही बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त निरात्म्यवाद तथा स्वभावोपरमवाद आदि सिद्धान्तों का भी वर्णन प्राप्त होता है।

न्यायदर्शन के सन्दर्भ
न्यायशास्त्र के समान तत्त्वर्निणय के लिए चरक ने भी चवालीस वाद मार्गों का निर्देशन किया। बाद मर्यादा का लक्षण है - जिसमें अनेक वक्ता हो तथा उनके अपने-अपने विषय के साधक हेतु भी हो तथा दोनों में से किसी एक पक्ष में ही अन्त के साधक हेतु भी हों एवं दोनों में से किसी एक पक्ष में ही अन्त में निर्णय हो तो ऐसे वचन समुदाय को वाद कहते हैं।[1] चरक संहिताकार ने बाद का लक्षण इस प्रकार किया है -

> तत्रैदं वादमर्यादालक्षणं भवति इदं वाच्यम्
> इदमवाच्यम्, एवं पराजितो भवतीति।[2]

अर्थात् यह कहना चाहिए, यह नहीं कहना चाहिए। ऐसा करने पर पराजित होता है। चवालीस वाद मार्ग इस प्रकार है - वाद, द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, प्रतिज्ञा, स्थापना, प्रतिष्ठापना, हेतु, दृष्टान्त, उपनय, निगगन, उत्तर, सिद्धान्त, शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य, औपम्य, संशय, प्रयोजन, सत्यविचार, जिज्ञासा, व्यवसाय, अर्थप्राप्ति, संभव, अनुयोज्य, अननुयोज्य, अनुयोग, प्रत्यानुयोग, वाक्य दोष, वाक्य प्रशंसा, छल, अहेतु, अतीतकाल, उपलम्भ, परिहार, प्रतिज्ञा हानि, अभ्यनुज्ञा हेत्वन्तर, अर्यान्तर तथा निग्रहस्थान[3] उपर्युक्त वादमार्ग न्यायसूत्र में वर्णित विभिन्न तत्त्व तथा वैशेषिक दर्शन के पदार्थों का ही संग्रह समझना चाहिए। न्याय दर्शन के पदार्थ, पांच अवयव, चार प्रमाण, हेतु तथा हेत्वाभास तथा वैशेषिक दर्शन के षट-पदार्थ ही इन चवालीस वाद मार्गों में, चरक ने इन सबका संग्रह किया है।

वाद के भेद - चरक संहिता में बाद के दो भेद कहे हैं - 1. जल्य, 2. वितष्डा।
अपने-अपने पक्ष से सम्बधित विषय का उचित रूप से प्रतिपादन करना जल्य है।[4] जल्य के विपरीत चर्चा के स्वरूप को वितष्डा कहते हैं। वहीं महर्षि गौतम ने भी जल्य तथा वितष्डा की इसी-प्रकार की परिभाषा कहीं है - जिस कथा में स्वपक्ष की स्थापना तथा परपक्ष का खण्डन हो उसे जल्य तथा जो विरूद्ध पक्ष की स्थापना से रहित हो उसे वितष्डा कहते हैं।[5]

वाद के 44 पद - वाद के 44 पद चरक संहिताकार ने कहे हैं उन्हें न्याय दर्शन का ही संग्रह समझना चाहिए। इन पदों का वर्णन हम क्रमानुसार करेंगे -

---

1 न्याय दर्शनम्, पदार्थोपदेश प्रकरणम्, पृष्ठ, 13
2 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/26
3 वही, 37
4 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/28
5 न्याय दर्शनम्, अध्याय-1, आह्निक, 2/2-3

वाद
जो प्रतिपक्षी के स्थान शास्त्र के अनुसार अर्थात् जो शास्त्रीय मर्यादा, विषय आदि की परिधि के भीतर हो किन्तु विपरीत भावना से युक्त होकर कहा जाता है वह जल्प तथा वितण्डा भेद से दो प्रकार का होता है।[6]
द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य विशेष का अध्ययन वैशेषिक दर्शन के सदर्भों के साथि आगे किया जाऐगा।

स्थापना
उसी शास्त्रार्थ सम्बंधी प्रतिज्ञा का नाम स्थापना है, जिससे अपने द्वारा की गई प्रतिज्ञा की हेतु, दृष्टान्त, उपनय तथा निगमन उपायों से स्थापना की जाती है।[7]

प्रष्ठिापना
जिससे विपक्षी की प्रतिज्ञा के विरीत अर्थ की स्थापना की जाए उसे प्रतिष्ठापना कहते हैं।[8]

प्रतिज्ञा
विषय को सिद्ध करने के लिए तर्क तथा प्रमाण द्वारा उस विषय को सिद्ध करना प्रतिज्ञा है।[9] वहीं गोतम ने कहा है - सिद्ध करने वाले निर्देश को प्रतिज्ञा कहते हैं।[10]

हेतु
उपलब्धि के कारण को हेतु कहते हैं अर्थात् जिस वाक्यसमूह से अपनी बात का सही-सही ज्ञान कराया जा सके उसका नाग हेतु है। वह उपलब्धि कारण - प्रत्यक्ष, अनुमान, ऐतिह्य, उपमान, इन चार सम्मिलित हेतुओं से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह तात्त्विक ज्ञान है।[11]

दृष्टान्त
दृष्टान्त उसे कहते हैं कि जिसकी सहायता से मूर्ख भी उतना ही समझ सकें, जितना विद्वान समझे हो।[12] लोक व्यवहार को जानने वाले लौकिक पुरुष तथा शास्त्र को जानने वाले लौकिक पुरुष तथा शास्त्र को जानने वाले परीक्षक ऐसे दोनों प्रकार के प्राणियों को जिस पदार्थ से बुद्धि की समानता होती है वह पदार्थ दृष्ट कहा जाता है।[13]

उपनय
साध्य की विधर्मता के रूप में अथवा उपंहार के रूप में उपनय का प्रयोग होता है।

सिद्धान्त
सिद्धः अन्तः यस्मिन् सः। सिद्धान्त उसे कहते हैं, जिसक परीक्षकों ने अनेक प्रकार से परीक्षण करके और हेतुओं द्वारा उन विषयों को सिद्ध कर जिस निर्णय की स्थापना कर दी हो। यह सिद्धान्त चार प्रकार का होता है - 1. सर्वतन्त्र सिद्धान्त, 2. प्रतितन्त्र सिद्धान्त, 3. अधिकरण सिद्धान्त, 4. अभ्युगम सिद्धान्त।
शास्त्र, अधिकरण तथा अभ्युपगम इन तीनों के माने हुए विषयों की अच्छी तरह व्यवस्था मानना सिद्धान्त कहलाती है। वह सिद्धान्त चार प्रकार का है - सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण, अभ्युपगम।[14]

उत्तर
हेतु के समान धर्म द्वारा उपदेश होने पर विपरीत धर्म तथा हेतु के विपरीत धर्म द्वारा उपदेश होने पर समान धर्म का कथन 'उत्तर' कहा जाता है।

शब्द
वर्णसमाम्नाय अर्थात् वर्ण-समूह को शब्द कहते हैं। वर्णों के समूह से दो प्रकार के शब्दों की उत्पत्ति होती है - 1. सार्थक, 2. निरर्थक। वह सार्थक शब्द चार प्रकार का होता है - दृष्टार्थ, अद्रष्टार्थ, सत्य, अनृत।

प्रत्यक्ष
प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जो आत्मा तथा ज्ञानेन्द्रियों द्वारा स्वयं जाना जाता है। आत्म द्वारा प्रत्यक्ष होने वाले विषय - सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष आदि। इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष होने वाले विषय - शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध।[15]

अनुमान
युक्ति की अपेक्षा रखने वाले को अनुमान कहते है।

ऐतिह्य
वेद आदि आप्तजनों के उपदेश को ऐतिह्य कहते हैं।

उपमान
जो दूसरी वस्तु द्वारा दूसरे का सादृश्य दिखाकर ज्ञान कराता है उसे उपमान कहते हैं।

संशय
संदेह के लक्षणों से युक्त होने से संदेह युक्त विषयों में निश्चय का न होना ही संशय है।[16] महर्षि गौतम ने षोडश पदार्थों में संशय को तृतीय पदार्थ माना है। साधारण तथा विशेष धर्म के ज्ञान से विरुद्ध दो पक्षों के ज्ञान से और उपलब्धि तथा अनुपलब्धि इन दोनों की अव्यवस्था इससे भी विशेष धर्म की आवश्यकता रखने वाला विरूद्ध दो पक्षों को विषय रखने वाला ज्ञान ही संशय है।[17]

प्रयोजन
जिसकी सिद्धि या प्राप्ति के लिए कार्य प्रारम्भ किया जाए उसे प्रयोजन कहते हैं।[18] गौतम में न्याय में प्रयोजन को लगभग इसी प्रकार कहा है - जिस विषय को लेकर प्राणियों की प्रवृति होती है अर्थात् संसार के प्राणिमात्र की जिस विषय में साधारण रूप से प्रवृत्ति होती है उसे प्रयोजन कहते हैं।[19]

सव्यभिचार
जो अपनी बात पर स्थिर न हो उसे सव्यविचार कहते है। न्याय दर्शन में सव्यभिचार को हेलाभास के पांच भेदों में एक भेद माना है। यह सव्यभिचार तीन प्रकार का है - साधारण, असाधरण, अनुपसंहारी।

जिज्ञासा
किसी विषय की परीक्षा को जिज्ञासा कहते हैं।

व्यवसाय
निश्चय का नाम ही व्यवसाय है।

अर्थ प्राप्ति
जहां एक वाक्य या वाक्यांश के प्रयोग से उस अर्थ की प्राप्ति होने के साथ ही एक अनुक्त अर्थ की प्राप्ति होती है उसे आयुर्वेद में अर्थ प्राप्ति कहते हैं। वहीं यह अर्थप्राप्ति न्याय दर्शन में अर्थापति है। वह अर्थापत्ति दो प्रकार का हैं - श्रुतार्यापति तथा द्रष्टार्थापति।

---

6 वही, 28
7 वही, 31
8 वही, 32
9 वही, 30
10 न्याय दर्शनम्, अध्याय-1, आह्निक, 1/33
11 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/33
12 वही, 8/34
13 न्याय दर्शनम्, अध्याय-1, आह्निक, 1/25
14 वही, 38-39
15 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/11, 38-39
16 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/40-43
17 न्याय दर्शन, 1/1/23
18 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/44
19 न्याय दर्शन, 1/1/24

सम्भव
जो वस्तु जिस स्थान से उत्पन्न होती है वही उत्पत्ति स्थान उस वस्तु का सम्भव है।

अनुयोज्य
उस वाक्य को अनुयोज्य कहते है जो वाक्य वाक्यदोष से युक्त हो।

अननुयोज्य
जो अनुयोज्य के सर्वथा विपरीत हो तथा अनुयोज्य में कहे दोष में रहित हो उसे अनुयोज्य कहते है।

अनुयोग
पुरुष नित्य है इस प्रकार की प्रतिज्ञा की जाती है, दूसरा पूछे कि इसमें हेतु क्या है? इसको अनुयोग कहते है।

प्रत्यनुयोग
अनुयोग के सम्बन्ध में पुनः अनुयोग करना ही प्रत्यनुयोग है।

वाक्यदोष
जो किसी अर्थ में न्यून, अधिक, अनर्थक, अपार्थक तथा विरूद्ध हो उसे वाक्यदोष कहते हैं।

वाक्य प्रशंसा
जो वाक्य जिस अर्थ में प्रयुक्त हो उस अर्थ के निर्वाह में उसमें न पूर्वोक्त न्यूनत्व न अधिकत्व दोष हो तथा अर्थ से पूर्ण हो, विरूद्ध दोष न हो तथा जिसमें पदों का स्पष्ट अर्थ मालूम होता हो उसे वाक्य प्रशंसा कहते हैं।

छल
जिस वाक्य में पूर्ण रूप से धूर्तता, अर्थाभास, अनर्थक हो तथा जो वारजाल मात्र हो। वह छल दो प्रकार का होता है - 1. वाक्छल, 2. सामान्य छल।[20] वही महर्षि गौतम ने छल तीन प्रकार का माना है - वाक्छल, सामान्यछल, उपचारछल।[21]

अहेतु
यह अहेतु तीन प्रकार का होता है - प्रकरणसम्, संशयसम्, वर्ण्यसम। इसी को महर्षि गौतम ने हेत्वभास कहा है तथा इसके पांच भेद स्वीकार किए हैं। सव्यभिचार, विरूद्ध, प्रकरणसी, साध्यसम, अतीतकाल।

अतीतकाल
जिस वाक्यांश को पहले कहना चाहिए या उसे यदि बाद में कहा जाए। इस वचन को अतीत काल कहते है।

उपालम्भ
वादी प्रतिवादी द्वारा दिये गये हेतु में एक दूसरे के दोष को बतलाना उपलब्भ कहा जाता है।

परिहार
उस वादी या प्रतिवादी द्वारा दिये गये हेतु के दोषयुक्त वचनों को दूर करने के लिये जो तर्क उपस्थित किये जाते हैं उसे परिहार कहते हैं।[22]

प्रतिज्ञा-हानि
शास्त्रार्थ में पहले की गई प्रतिज्ञा को पराजित होने पर छोड़ दिया जाता है। न्याय दर्शन में इसके चार भेद माने हैं - प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञासन्यास।[23]

अभ्यनुज्ञा
जिसमें इच्छित तथा अनिच्छित विषय में स्वीकार किया जाता है।

हेत्वन्तर
वास्तविक हेतु के स्थान पर दोषयुक्त हेतु प्रयोग करना।[24]

अर्थान्तर
जहां किसी एक निश्चित विषय के सम्बन्ध में कहना चाहिए वहाँ दूसरे विषय का प्रतिपादन करना अर्थान्तर कहलाता है। 44 निग्रहस्थान - पराज्य की प्राप्ति का ही नाम निग्रहस्थान है।[25] जिन विरुद्ध ज्ञान से अज्ञानादिरूप निग्रहस्थानों से वादी-वादी पराजित होता है उसे निग्रह स्थान कहते हैं।[26]

वैशेषिक दर्शन के संदर्भ
द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय का निरूपण करने वाले वैशेशिक दर्शन से ही इस ग्रन्थ 'चरक-संहिता' का श्रीगणेश हुआ है। उन महर्षियों ने अपनी दिव्य दृष्टि से इन पद-पदार्थों को देखा तथा इनको जानकर आयुर्वेद-तन्त्रोक्त विधि का सहारा लेकर उत्कृष्ट सुख तथा अविनाशी जीवन को प्राप्त किया।[27] इस ग्रन्थ में द्रव्य, गुण तथा कर्म में अन्वित होते हैं तथा चिक्तिसा कर्म में इन्हीं दोनों की प्रधानता है।

सामान्य तथा विशेष
सभी भावों की वृद्धि का कारण सामान्य होता है तथा विशेष ह्रास का कारण होता है। सामान्य एकत्व कारक होता है तथा विशेष प्रधक्त्व कारक होता है।

गुण
जो समवायी अर्थात् किसी के आधार पर रहने वाले पदार्थ निष्क्रिय और कारण हो उसे गुण कहते हैं।[28] वैशेषिक दर्शन में गुण को इस प्रकार कहा है - जो द्रव्य के आश्रित, द्रव्य को भिन्न तथा संयोग तथा विभाग के उत्पन्न करने में दूसरे की अपेक्षा से रहित कारण रूप कर्म से भिन्न हो उसे गुण कहते हैं।[29] इन गुणों की संख्या जहाँ वैशेषिक दर्शन में 24 कह है वहीं चरक संहिता में 5 इन्द्रिय गुण, 20 द्रव्यगुण, 6 आत्मा के गुण तथा 10 सामान्य गुणों को मिलाकर 41 मानी गई है।

द्रव्य
जिसमें कर्म तथा गुण आश्रित हो और द्रव्य, गुण, कर्म का समवायि कारण हो उसे द्रव्य कहते हैं। वैशेषिक दर्शन में द्रव्य का लक्षण इस प्रकार है - क्रियागुणवान तथा केवल गुणवान तथा समवायिकारण यह द्रव्य का लक्षण है। तर्कसंग्रह में द्रव्य - द्रव्य गुणश्रय एवं कर्माश्रय होता है।

द्रव्य के प्रकार
आकाश आदि पाँच महाभूत, आत्मा, मन, काल तथा दिशा इन नौ द्रव्यों का संग्रह है।[30] वैशेषिक दर्शन में भी इन्हीं नौ द्रव्य का उल्लेख किया है।

कर्म
संयोग तथा विभाग में कर्म ही कारण है। वह कर्म द्रव्य में आश्रित होता है। प्रयत्न आदि चेष्टाओं को कर्म कहा जाता है।[31] वैशेषिक दर्शन में कर्म का लक्षण इस प्रकार है - एक द्रव्य में वहने वाला गुणरहित तथा संयोग-विभाग में किसी की अपेक्षा न रखने वाला कर्म कहलाता है। तर्कभाषा में चलनात्मक कर्म। अर्थात् कर्म चलानात्मक (गतिरूप) है। वह कर्म पांच प्रकार का होता है - उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन।

---

20 चरक संहिता, विमान स्थान, 8/49-56
21 न्याय दर्शन, 1/2/10-14
22 वही, 5
23 वही, 3-4
24 चरक संहिता, विमान, 8/57-64
25 वही, 8/65
26 न्याय दर्शनम्, 1/2/19
27 चरक संहिता, सूत्र स्थान, 1/28-29
28 वही, 51
29 वैशेषिकार्यभाष्ये, 1/1/16
30 चरक संहिता, सूत्र स्थान, 1/48-49
31 चरक संहिता, सूत्र स्थान, 1/52, 49

समवाय

भूमि आदि द्रव्यों का अपने-अपने गुणों के साथ मिला जुला रहता ही समवाय है। वह समवायनित्य है क्योंकि जहां द्रव्य रहता है वहाँ गुण की अनियतता नहीं होती।[32] तर्कभाषा में समवाय की परिभाषा इस प्रकार है - अयुतसिद्ध अथवा अपृथक सिद्ध दो पदार्थों के बीच जो सम्बन्ध होता है उसी प्रकार को समवाय कहते हैं।[33]

अतः चरक संहिता में न्याय के चार प्रमाण, संवाय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त के चार प्रकार, वाद, जल्पः वितण्डा, हेत्वाभास तथा हेत्वाभास के भेद, छल, जाति तथा निग्रहस्थान इत्यादि सिद्धान्त तथा वैशेषिक दर्शन के षड् पदार्थ इत्यादि सन्दर्भ हमें चरक संहिता में प्राप्त होते हैं।

सन्दर्भ

1. सर्वदर्शन संग्रह लेखक : गाधवाचार्य, भाष्यकार : डॉ0 उमाशङ्करशर्मा ऋषि प्रकाश : चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-221001, संस्करण : 2012
2. चरक संहिता (प्रथम-भाग) लेखक-चरक, व्याख्याकार : डॉ0 ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, प्रकाशक : चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वारणसी, 37/114, गोपाल मन्दिरलेन, पोस्ट बॉक्स नं0 1129, संस्करण : 2017
3. न्यायदर्शनम्, लेखक : महर्षिगोतम, अनुवादक : ठाकुर उदय नारायण सिंह, प्रकाशक : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू0ए0 जवाहरनगर, बंगलोरोड़, दिल्ली-110007, संस्करण : 2009
4. तर्कभाषा, लेखक : केशवमिश्र, व्याख्याकार : सुरेन्द्रदेव शास्त्री, प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-221001, संस्करण : 2003
5. वैशेषिक दर्शन, लेखक : कवाद व्याख्याकार : स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, प्रकशक : सत्यधर्म प्रकाशन
6. वैशेषिक दर्शन (एक अध्ययन) लेखक : डॉ0 श्रीनारायण मिश्र, प्रकाशक : चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी

[32] वही, 50

[33] तर्कभाषा